Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 3 | SPECIAL ISSUE MARCH-2023

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण एवं भारतीय मूल्य

डॉ. भूपेन्द्र कुमार जाँगिड. सहायक आचार्य, *VSY (भूगोल विभाग) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाराँ, जिला–बाराँ (राजस्थान)

ABSTRACT:

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध सृष्टि के निर्माण के साथ ही चला आ रहा है। धरती सदैव ही समस्त जीव–जन्तुओं का भरण–पोषण करने वाली रही है।

''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।''

इन पाँच तत्वों से सृष्टि की संरचना हुई है। बिना प्रकृति के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भौतिक युग में जहाँ विकास के नाम पर मानव ने प्रकृति के सुंदर स्वरूप को क्षति पहुँचा पर्यावरण को ही चुनौती देकर अपने जीवन को ही संकट में डाल दिया है। इस स्थिति में पयावरण की सुरक्षा के लिए जागरूकता फैलाना अति आवश्यक हो गया है। विश्व पर्यावरण दिवस 2020, प्रकृति के साथ हमारे सह–अस्तित्व एवं साहचर्य की ओर ध्यानाकर्षण का एक विशेष अवसर है। प्रारंभ से ही, मानव जाति स्थानीय से वैश्विक स्तर तक प्रकृति के साथ सम्यक् संतुलन स्थापित करने का प्रयास कर रही है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को लेकर मनुष्य के बढ़ते लालच का परिणाम संपूर्ण ब्रह्मांड के लिए विनाशकारी साबित हुआ है। पृथ्वी के पर्यावरण को उस समय से हानि होनी प्रारम्भ हो गयी, जब मानव व्यवसायी हुआ था। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य अपनी आजीविका के लिए संग्रहण व आखेट पर निर्भर था। लेकिन समय के साथ मनुष्य अपने ज्ञान के आधार पर प्रकृति का अतिदोहन करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता गया। इसी के साथ जनसंख्या का आकार भी बढ़ता गया। जिसके कारण मनुष्य अधिक संसाधन उत्पन्न करने लगा। जिससे पर्यावरण ह्यास होना प्रारम्भ हो गया। ज्ञान एवं तकनीक के विकास के साथ–साथ मनुष्य के द्वारा कृषि विस्तार और अन्य विविध प्रकार से विकास के नाम पर वनों का विनाश व नये–औजारों का आविष्कार किया गया। तकनीकी बढ़ने के साथ ऊर्जा संसाधन को काम में लेने लगा या यौं कह सके है कि नई–नई मशानों व यातायात के साधनों का विकास हुआ। इस प्रकार मानव विकास के साथ पर्यावरण का अधिक दोहन करने लगा।

KEYWORDS:

पर्यावरण, पारिस्थितिकी, भारतीय साहित्य, दर्शन, संरक्षण, संवर्धन, पंचतत्व, भारतीय मूल्यों, दार्शनिक परम्परा, धार्मिक वृक्षों, वेद, पुराण, रामायण, रामचरितमानस, खेजड़ली।

लेख प्रस्तावना :

आज के समकालीन युग में पर्यावरण और पारिस्थितिकी शब्दों का जीवमण्डल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पारिस्थितिकी पर्यावरण अध्ययन का ही एक विज्ञान है। पर्यावरण और पारिस्थितिकी की महत्ता इतनी बढ़ गयी है कि अब यह पूर्व की भाँति केवल वनस्पति शास्त्र या जैविक विज्ञान का ही क्षेत्र नहीं रह गया है, अपितु सभी प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों में इसके अध्ययन पर बल दिया जा रहा है। दर्शन भी पर्यावरण के प्रभाव से स्वतन्त्र नहीं रह सकता, क्योंकि दर्शन वैसे भी सम्पूर्ण सार्वभौम का बौद्धिक एवं समालोचनात्मक अध्ययन करता है। आज दर्शन केवल सैद्धान्तिक, अमूर्त एवं अव्यावहारिक नहीं रह गया है, अपितु जीवन, जगत तथा प्रकृति से जुड़ी व्यावहारिक समस्याओं और मूर्त सिद्धान्तों का भी यह अध्ययन करता है। दर्शन के अन्तर्गत हम बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाते हैं तथा बिना किसी पूर्वाग्रह तथा पक्षपातपूर्ण धारणा के समय का सम्यक मूल्यांकन करते हैं तथा इसके बौद्धिक समाधान को ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं। पारिस्थितिकी दर्शन में भी पहले हमें पारिस्थितिकी के घटकों का विश्लेषण करना होगा, उनके पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करनी होगी तथा तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण करना होगा जिससे वर्तमान पर्यावरणीय संकट के मूल कारण को समझा जा सके। दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाते हुए हमें प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्ध का विश्लेषण करना होगा तथा यह देखना होगा कि प्राचीन काल में पर्यावरण संकट और पारिस्थितिकी असंतुलन क्यों नहीं रहा होगा। आज वे कौनसी नई परिस्थितियाँ आ गई हैं जिनके कारण मानव अस्तित्व के समक्ष यह भयावह संकट उत्पन्न हो गया है ?

जहां तक पर्यावरण संरक्षण की बात है, भारत सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक लोकाचार की समृद्ध परम्परा वाला देश रहा है। वेदों और प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पृथ्वी को माता का दर्जा दिया गया है।

अथर्ववेद में कहा गया है – ''माता भूमिः, पुत्रो अहंम् प्रथिव्याः''

अर्थात् ''यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ।'' यहाँ प्रकृति के पंचतत्वों अर्थात् जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी और वायु की पूजा पीढ़ियों से होती रही है। देश भर में पेड़–पौधे, पहाड़, नदियों और फसलों की पूजा की विभिन्न धार्मिक मान्यताएँ रही हैं। गोवर्धन पूजा, छठ पूजा, तुलसी, आक, वटवृक्ष पूजा, बैसाखी, गोदावरी पुष्करम, बिहू, राजापर्बा, मकर संक्रांति या पोंगल जैसे त्यौहारों की जड़ें प्रकृति से जुड़ी हैं और ये प्रकृति संरक्षण और सम्मान का शाश्वत संदेश देते हैं। भारत विश्व का एक मात्र देश है, जिसे ईश्वर ने 6 विभिन्न ऋतुओं से सुशोभित किया है यथा – ग्रीष्म, शरद, वर्षा, हेमंत, शिशिर और बसंत। ये 6 ऋतुएं हमें प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत करने की शिक्षा भी प्रदान करती हैं। लगभग एक सदी पहले महान भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसू ने ही यह सिद्ध किया था कि पेड़–पौधों, वनस्पति में भी जीवन होता है, ये भी हमारी तरह ही लगाव एवं दर्द महसूस करते हैं। यहां बिश्नोई समाज का जिक्र करना प्रासंगिक प्रतीत होता है, जिसनें हमेशा से ही प्रकृति एवं पर्यावरण सरंक्षण का शाश्वत संदेश दिया है। 1730 के खेजड़ली नरसंहार को याद कीजिए जब अमृता देवी बिश्नोई के नेतृत्व में 363 महिलाओं ने खेजड़ली वृक्ष के संरक्षण के लिए अपना जीवन का सर्वोच्च बलिदान दिया था। इन सदियों पुरानी परंपराओं और रीति–रिवाजों के कारण प्रकृति के साथ हमारा एक भावनात्मक और सहज संबंध रहा है।

पर्यावरण संरक्षण भारतीय मूल्यों में अंतर्निहित :

पर्यावरण संरक्षण भारतीय मूल्यों में अंतर्निहित रहा है और वैश्विक सम्मेलनों और संधियों में हमारी भागीदारी में भी यह भाव दिखाई देता है। खतरनाक कचरे को सीमापार ले जाने को नियंत्रित करने संबंधी बेसल कन्वेंशन, रसायन और कीटनाशी के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी रॉटरडैम कन्वेंशन, लगातार जैविक प्रदूषण (पीओपी) से मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा के लिए स्टॉकहोम कन्वेंशन, तापमान के संबंध में वैश्विक रूप से बाध्यकारी साधन विकसित करने के लिए मिनामाटा कन्वेंशन, जैव विविधता संबंधी रियो डी जेनेरियो कन्वेंशन, आर्द्रभूमि के संरक्षण के लिए रामसर कन्वेंशन, ओजोन परत की रक्षा के लिए वियना कन्वेंशन, जलवायु परिवर्तन संबंधी संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) के लिए पेरिस समझौते जरुरी मुद्दों को उठाते हैं और अब हमारी नीतियों की आधारशिला हैं। 1987 में प्रकाशित 'आवर कॉमन फयूचर' जिसे 'ध्रुटलैण्ड रिपोर्ट' भी कहते हैं, में सतत विकास को परिभाषित करते हुए कहा गया कि "हमें प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए की आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधनों की कमो न हो।"

भारत प्राचीनकाल से ही संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल देता है। भारत अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (आईएसए) के माध्यम से सौर ऊर्जा क्षमता बढ़ाने की वैश्विक मुहिम का नेतृत्व कर रहा है। गौरतलब है कि महज कुछ महीने पहले ही, तमाम देश 2020 से पूर्व के क्योटो प्रोटोकॉल की जगह 2020 के बाद पेरिस समझौते को अपनाने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन अब कोरोना महामारी ने स्थितियाँ पूरी तरह से बदल दी हैं और हमें कोविड पश्चात् के समय के लिए नए नियम अपनाने होंगे। अब हमें मानवता और प्रकृति की रक्षा के लिए अधिक मुखर और व्यापक होकर तथा सामूहिकता की भावना से कार्य करने होंगे।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में, अलग–अलग जिम्मेदारियों और क्षमता के बावजूद समानतापूर्ण और साझा सिद्धांतों को अपनाने के प्रति भारत का दृष्टिकोण इस बात का प्रमाण है कि हम प्रकृति और मानवता के बीच सौहार्दपूर्ण और टिकाऊ संतुलन प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं। हाल ही में विशाखापट्टनम में गैस लीकेज की घटना एवं केरल के मल्लापुरम में गर्भवती हथिनी की निर्मम अमानवीय हत्या हमारे लिए चिंता का विशय है। इन विषयों में त्वरित कार्यवाही एवं जागरूकता की महती आवश्यकता

है ताकि ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो। पर्यावरण सरंक्षण और सभी जीवधारियों एवं प्रकृति के साथ साहचर्य विकसित करने के लिए मानव जाति को ज्यादा सघन, करूणा तथा प्रेम का परिचय देना होगा और प्रकृति सरंक्षण के सामूहिक प्रयासों को अधिक गति देनी होगी।

भारत के संघीय ढांचे में पर्यावरणीय कार्य पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का कार्यक्षेत्र है। बॉटेनिकल सर्वे ऑफ इंडिया, भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण, भारतीय वन सर्वेक्षण, भारतीय वन्य जीव संस्थान, केंद्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण, राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण, वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो, भारतीय जीव कल्याण बोर्ड (एडब्ल्यूबीआई), केंद्रीय और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों, राष्ट्रीय वानिकी और पारिस्थितिकी विकास बोर्ड, राष्ट्रीय हरित ट्राइब्यूनल और अन्य स्वायत्त निकाय पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा के उपायों को लागू करने और उनकी निगरानी के काम में सक्रियतापूर्वक जुटे हैं। विकास योजना के सफल कार्यान्वयन और पर्यावरण संरक्षण उपायों के पालन में प्रबुद्ध समाज, वैज्ञानिक, व्यवसायी आर उद्योग जगत, गैर–सरकारी संगठनों और अन्य सभी संबंधित पक्षों की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। जोखिमकारी पदार्थ प्रबंधन, रासायनिक सुरक्षा, ई–कचरा प्रबंधन, अपशिष्ट से ऊर्जा निर्माण, ठोस और प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन योजना और अन्य योजना के लिए संस्थागत से लेकर व्यक्तिगत स्तर तक सभी हितधारकों को सक्रिय भागीदारी निभानी होगी और साझा जिम्मेदारी वहन करनी होगी।

आज हम पर्यावरण क्रान्ति के दौर से गुजर रहे हैं। मानव ने पर्यावरण के सम्बन्ध में इतनी चिन्ता कभी भी प्रदर्शित नहीं की जितनी कि वर्तमान में देखने को मिलती है। पारिस्थितिक ज्ञान के आलोक में यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव भी पर्यावरण का ही एक भाग है। उसका पर्यावरण से स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़, पौधे, पशु, मानव, सब मिलकर पर्यावरण बनाते हैं। प्रकृति में इन सबकी मात्रा और इनकी रचना कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक संतुलनमय जीवन चलता रहे। आज इस संतुलन के भंग होने के कारण पर्यावरणीय संकट एक ज्वलन्त समस्या बन गयी है जिसके प्रति विश्व में व्यापक चेतना जागृत हुई है। फलतः ज्ञान की एक नई शाखा पर्यावरण विज्ञान अस्तित्व में आयी है।

पाचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा और पर्यावरण

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा में वेदों, उपनिषदों, पुराणों, षड़दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन का प्रभुत्व रहा है। जहाँ इसमें मानव, सृष्टि, ब्रह्माण्ड, जीव तथा ब्रह्म का विस्तृत वर्णन किया गया है, वहीं प्राचीन दर्शन मे पारिस्थितिकी को भी संतुलित रखने का सुन्दरतम समावेशित प्रयास किया गया है। जहाँ परम्परागत चिंतन में पारिस्थितिकी मानवीय अन्तर्सम्बन्धों का गहन अध्ययन देखने को मिलता है, वहीं उसके संरक्षण एवं संवर्धन का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। जल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नदियों, पर्वतों, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, प्राणवायु, पेड़–पौधों व जीव–जन्तुओं को देवता मानकर उनकी पूजा करने का वर्णन मिलता है जो महान प्राचीन पारिस्थितिकी दर्शन को दर्शाता है। मानव के अभ्युदय से लेकर आज तक की घटनाएँ इंगित करती हैं कि इस सृष्टि के रचयिता ने संघर्ष टालने के दृष्टिकोण से सर्वाधिक जैविक गुण मानव में आरोपित कर उसके सर्वश्रेष्ठ जीव बनने का मार्ग प्रशस्त किया। यही कारण है कि मनुष्य एक साथ पारिस्थितिकी का घटक और कारक बन गया।

अपने पौरुष, ज्ञान, विज्ञान, तकनीक, उद्यम और कल्पनाशक्ति के बल पर मानव भौतिक परिवेश के साथ–साथ सांस्कृतिक परिवेश का निर्माणकर्ता बना है। इसके सांस्कृतिक परिदृश्य की रचना क्रमिक विकास को इंगित करती है। आखेट और भोजन संग्रह काल को मानव सभ्यता का आदि काल कहा जा सकता है। अन्य जीवों की ही तरह इस अवस्था में मनुष्य भी पूर्णतः प्रकृति पर आधारित था। इस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ इतनी सीमित थीं कि प्रकृति इन्हें आसानी से पूरा कर देती थी। आदिवासियों की सीमित संख्या और सीमित आवश्यकताओं के कारण मानव प्रकृति सम्बन्ध अति मधुर थे। परिणामतः मानव पारिस्थितिकी पूर्णतः संतुलित थी। सभ्यता के विकास क्रम में पशुपालन एवं पशुचारण काल में पशुओं को जीवित पकड़ने की स्थिति मानव को और अधिक सुविधा देने का काल था। शिकार में सहायता करने के लिए सर्वप्रथम कुत्ता मनुष्य का दोस्त बना होगा। इतना सब होने के बाद भी प्रकृति के साधनों के दोहन की क्षतिपूर्ति प्रकृति आसानी से कर लेती थी।

कृषि काल में भरण–पोषण की बढ़ती सुविधा के कारण जहाँ एक ओर जनसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी, वहीं दूसरी ओर जनसंख्या का विस्तार होता गया। कृषि भूमि के लिए वन–विनाश, सिंचाई के लिए बांधों का निर्माण, चारागाह आदि से पारिस्थितिकी में संघर्ष उत्पन्न हुआ और सोच विकसित हुई कि –

''प्रकृति लाभ देती नहीं है, प्रकृति से लाभ लिया जाता है।''

इस भावना ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया और बड़े पैमाने पर वनों का विनाश हुआ। उन्नीसवीं सदी के मध्य से एक साथ विज्ञान, तकनीकी और औद्योगिक विकास का युग प्रारम्भ हुआ। वस्तु निर्माण, यातायात व नगरीकरण आदि ने मानव जीवन पद्धति को नया आयाम दिया। सुख सुविधाओं के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी जिसके लिए भोजन, वस्तु, मकान आदि जुटाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का वहद पैमाने पर दोहन हुआ। मनुष्य में प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की लालसा जगी।

मानव के विकृत जीवन मूल्यों को देखते हुए बहुत पहले यूरोपीय दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री रूसो ने टिप्पणी की थी कि – ''नगर मानव सभ्यता के कब्रगाह बनेंगे।''

आज यह कथन चरितार्थ हो रहा है। नगर आज प्रदूषण, अस्वस्थता, शोषण, विकृत जीवन मूल्य और यातना के केन्द्र बनते जा रहे हैं। कृषि में कृत्रिम उर्वरकों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में वृद्धि हुई है। कृषि भूमि के लिए वनों को साफ किया जा रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मानव को अनेक भौतिक सुख–सुविधाएं दी हैं, परन्तु प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन से जैविक, रासायनिक व रेडियोधर्मी प्रदूषणों में वृद्धि हो रही है, जिस कारण आज मानव का अस्तित्व संकट में जान पड़ता है। वैश्विक तापमान में वृद्धि होना, ओजोन पर्त में छिद्र होना, पशु, पक्षियों व वनस्पतियों की प्रजातियों का विलुप्त होना आज विश्व के सामने चुनौती बनी हुई है।

प्राचीन भारतीय चिन्तन में भारतीय दर्शन व संस्कृति में अतिप्राचीन काल से ही प्रकृति को आदरपूर्ण व सम्मानजनक स्थान दिया जाता रहा है। मानव समाज के ऐतिहासिक विकास क्रम का अवलोकन करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि जब तक मनुष्य प्रकृति पर आधारित था, मानव–प्रकृति सम्बन्ध समन्वयात्मक और सामंजस्यपूर्ण था, तब तक मानव अस्तित्व के समक्ष कोई संकट नहीं उत्पन्न हुआ था। जैसे–जैसे प्रकृति के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता गया, वह भौतिकवादी, सुविधाभोगी तथा आर्थिक मनुष्य हो गया, उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गईं, प्रकृति का शोषण करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई, तभी से ही पारिस्थितिकी में असन्तुलन होना प्रारम्भ हुआ तथा आज संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई है। पहले यह विचारधारा प्रधान थी कि प्रकृति हमें अपना उपहार देती है, जबकि अब यह विचारधारा प्रधान हो गई है कि प्रकृति से उपहार लिया जाता है। आर्थिक और तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न आधुनिक मानव प्रकृति को भोग्या मानता है तथा प्रकृति का अधिकतम शोषण करना अपने विकास के लिए परमावश्यक मानता है।

भारतीय परंपरा में धरती को 'माता' कहा जाता है जो अपने सभी संतानों का पालन–पोषण बिना भेद–भाव के स्वयं कष्ट उठाकर भी सदैव करती है। स्पष्ट है कि कोई भी संतान धृष्ट और उददंड होने पर भी अपनी माता का निरादर नहीं कर सकती। वेदों–उपनिषदों में मंत्रोच्चार का अभिन्न हिस्सा शांति पाठ रहा है जिसमें पृथ्वी, आकाश, जल, वायु आदि की शान्ति पाठ रहा है जिसमें पृथ्वी, आकाश, जल, वायु आदि की शांति के लिए कामना प्रार्थना की जाती है। आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन तथा धार्मिक अनुष्ठानों से ज्ञात होता है कि कैसे हमारे पूर्वजों ने भूमि को देवत्व प्रदान कर पृथ्वी, जल, और वायु को प्रदूषण से मुक्त रखने का सार्थक प्रयत्न किया था। उपासना के अवसर पर जल कलश स्थापना व पूजा सहित नदियों का उल्लेख मात्र आडम्बर नहीं है – गंगा, यमुनाश्चैव, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदे, सिंधु, कावेरी, जले, सन्निधिम कुरु इनके पीछे चिंतन विशेष की पृष्ठभूमि है।

पर्यावरण संरक्षण में विभिन्न धार्मिक वृक्षों का योगदान

भारतीय दर्शन में हिन्दु परिवारों में पौधे उनके जीवन के आवश्यक अंग माने जाते रहे हैं। अनेक वृक्षों की पूजा की जाती है तथा पूजा की सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य ने पर्यावरण के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाया। विभिन्न पेड़–पौधों की देवी–देवताओं से भी सम्बन्धित क्रिया, जिससे उपयोगी पौधों तथा वृक्षों का संरक्षण हो सके, क्योंकि ऋषि–मुनियों को इसका सही ज्ञान था, जैसे : तुलसी – राम, शिव, विष्णु, कृश्ण, लक्ष्मी व जगन्नाथ आदि। पीपल – विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा आदि। आंवला – विष्णु, लक्ष्मी आदि। अशोक – बुद्ध, इन्द्र, आदित्य, विष्णु आदि। बेल – शिव, दुर्गा, सूर्य, लक्ष्मी आदि। आम – गोवर्धन, लक्ष्मी, बुद्ध आदि। कदम्ब – कृष्ण, शिव आदि।

श्रीमद्भगवद् गीता में भी इस की श्रेष्ठता का स्पष्ट उल्लेख है, श्री कृष्ण, अर्जुन से कहते है –'अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां, देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः, सिद्धानां कपिलो मुनिः।।''

शास्त्रों में उल्लेख है कि ''अश्वत्थः पूजितोयत्र पूजिताः सर्व देवताः।'' अर्थात् पीपल की पूजा विधि विधान के अनुसार करने से सम्पूर्ण देवता स्वयं ही पूजित हो जाते हैं। अथर्ववेद में पीपल वृक्ष में देवताओं का निवास बताया गया है– ''अश्वत्थो देवसदनः''।

पर्यावरण संरक्षण में विभिन्न जीवों का योगदान

भारतीय दर्शन में अनेकों जीव हिन्दु देवी–देवताओं के वाहन के रूप में प्रयुक्त किए जाते रहे हैं तथा भगवान ने विभिन्न जीव अवतारों के माध्यम से अनेकों असुरों का संहार कर सृष्टि को बचाया है। इन जीवों में भगवान का वास होने के कारण हिन्दू धर्म के लोग इनको पूजते हैं। जैसे : गाय – सम्पूर्ण 33 कोटि देवी–देवता का वास। बैल (नंदी) – भगवान शिव। शेर – माँ दुर्गा। मूसक – श्री गणेश। सफेद हाथी – मा लक्ष्मी एवं भगवान इन्द्रदेव व गणेश जी। उल्लू – माँ लक्ष्मी । श्वेत हंस – माँ सरस्वती। मोर – भगवान कार्तिकेय। गरूड़ – भगवान विष्णु। मगरमच्छ – माँ गंगा। भैंसा – यमराज। कुत्ता – शनिदेव। नेवला – भगवान कुबेर। घोड़ा – सूर्यदेव। बंदर – हनुमान जी। सांप – शिवजी।

भारतीय संस्कृति पारिस्थितिकी संतुलन से कैसे जुड़ी रही है, इससे हमारे यहाँ होने

वाली वृक्ष–पूजा के विचार से जोड़कर देखा जा सकता है। वृक्ष को देवता मानकर पूजने की हमारी सांस्कृतिक मान्यता पारिस्थितिकी संतुलन का वैज्ञानिक आधार लिए हुए है। 'कठोपनिषद्' की कारिका है –

''ऊँ शनिदेवो अभिष्टो आपो भवन्तु न पिवते, मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखायाम् तु शंकरम्,
पत्रे–पत्रे देवानाम् वृक्षराज नमस्तुते।''

स्कन्ध पुराण के अनुसार – ''सभी प्रकार के पेड़ों का काटना निन्दनीय है। यज्ञ आदि के अलावा ऐसा कभी नहीं किया जाना चाहिए। विशेषकर वर्षा ऋतु में तो ऐसा करना सर्वथा वर्जनीय है।''

इससे पूर्व पर्यावरण संरक्षण के लिए नदियों के देवत्व वाला स्वरूप उभरकर हमारे समक्ष उपस्थित हुआ था। नदी सूक्त में कहा गया है –

''गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती। नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरू।।''

प्राचीन भारत के वैदिक वांग्मय में ऐसे अनेक सूक्त–ऋचाएँ उक्तियों कथानक मिलते हैं जिनमें प्रकृति के प्रति गहरा श्रद्धाभाव है।

यजुर्वेद का अध्ययन इस तथ्य का संकेत करता है कि उसके शांति पाठ में पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत और संतुलित बनाये रखने का उत्कष्ट भाव है, वहीं इसका तात्पर्य है कि समुचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो।

ऋग्वेद की ऋचा कहती है – ''हे वायु ! अपनी औषधी ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो।''

सामवेद कहता है – ''इन्द्र! सूर्य रस्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम! आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है।''

अथर्ववेद मानता है कि – ''मानव जगत के अधिक सन्निकट् है। व्यक्ति स्वस्थ, सुखी दीर्घायु रहे, नीति पर चले और पशु वनस्पति एवं जगत के साथ साहचर्य रखे।''

वैदिक कर्मकाण्डों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण सरंक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। रामायणकालीन सभी ग्रन्थों में जड़ व चेतन सभी तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में वर्णन मिलता है कि चरागाह तालाब हरित भूमि, वन–उपवन के सभी जीव आनंदपूर्वक रहते थे। भगवान कृष्ण द्वारा गायी गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। प्रकृति के कण–कण में सृष्टि का रचयिता समाया हुआ है। ऋग्वेद के सूक्त प्रकृति और पर्यावरण शुद्धि से ही जुड़े हैं –

''नियद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे महे शुष्माय येमिरे।''

ऋग्वेद के धावा–पृथिवी सूक्त में आकाश को पिता और धरती को माता मानकर उससे अन्न और यश देने की कामना की गई है –

''ते नो गुणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रः द्यावा पृथवी धासथो वृहत।
येनामि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समन्वित।''

भारतीय प्राचीन साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन का महत्ताः

आज जहां पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए विश्व में एक दिवस निर्धारित किया गया है जिसे पर्व के रूप में मनाया जाता है। वहीं भारतीय परंपराएँ सनातन काल से ही पर्यावरण को संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए ही विकसित की गईं थीं। भारतीय संस्कृति सदैव ही प्रकृति और पर्यावरण के महत्व एवं संरक्षण के प्रति सदैव ही जागरूक रही है। पर्यावरण के प्रति अगाध प्रेम व समर्पण की भावना हमारे धार्मिक ग्रन्थों व वेदों, पुराणों, उपनिषद, रामायण, रामचरित मानस, महाभारत एवं लोक साहित्य में परिलक्षित होती है। हमारे मनीषियों ने पर्यावरण के संरक्षण–संवर्धन को विशेष महत्व दिया है।

भारत में प्रत्येक भाषा–साहित्य में प्रकृति से जुड़े प्रत्येक तत्वों का बड़ी सूक्ष्मता और सुंदरता के साथ वर्णित करते हुए, उसे देवतुल्य मानकर उसकी उपासना की गई है। यहाँ पंच महाभूत अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश के साथ ग्रह–नक्षत्र, नदियाँ, तालाबों, पर्वत, पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं सभी में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारते हुए उनके प्रति आदर–सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। भारतीय परंपराओं में पर्यावरण अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक परम्पराओं के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य जुड़ा है।

वेदों को सृष्टि विज्ञान का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। वेदों में पर्यावरण संतुलन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी का स्तवन अनेक स्थलों में किया गया है। अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है।

'अग्ने! सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व'

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि तत्व के स्तवन से होता है।

ऋग्वेद में जल के महत्व को इस प्रकार बताया गया है – 'अप्सु अन्तःअमृतं, अप्स भेषजं'।

अर्थात् जल में अमृत है, जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता, स्वच्छता बनाये रखने की।

ऋग्वेद के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार है – ''पृथ्वीः पूःच उर्वी भव''।

अर्थात् समग्र पृथ्वी संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गांव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा।

यजुर्वेद में यज्ञ विधियां एवं यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ स्वयं एक चिकित्सा है। यज्ञ वायु मंडल को शुद्ध कर रोगों और महामारियों को दूर करता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद का अत्यंत महत्व है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं जड़ी बूटियाँ तथा शल्य चिकित्सा व विभिन्न रोगों का वर्णन है। सामवेद में ऐसे मंत्र मिलते है जिनसे ये प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों को ऐसे वैज्ञानिक सत्यों का ज्ञान था जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को सहस्राब्दियों बाद प्राप्त हो सकी।

वेदों के पश्चात रामायण और रामचरित मानस की बात करें तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास जी ने मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है तभी मानव जीवन आनंदकारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है।

तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इस प्रकार किया है – ''फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग जग पंचानन।

खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।''

पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं, –

''रीझि–खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।''

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है।

वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया –

"सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ।"

श्रीराम ने भी 14 वर्ष के वनवास को अपने सौभाग्य के कारण माना जो उनके प्रकृति प्रेम को इंगित करता है। वनवास काल में सीता जी एवं लक्ष्मण ने भी वृक्षारोपण किया – "तुलसी तरुवर विविध सुहाए, कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।'' अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में ''सबहिं'' शब्द विशेष महत्त्व का है अर्थात् रोपण सभी को करना है उसका आकार, प्रकार जैसा भी हो।

''सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त की नाईं।।''

रामचरित मानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है– "बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहिं"।

रामचरित मानस में पर्यावरण के महत्व व संरक्षण के साथ मानव के अटूट संबंध को दर्शाया गया है।

रामायण कालीन ग्रंथों में सजीव–निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि जी ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे जिनमें जीव–जन्तु एवं पशु–पक्षियों कासमूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल मे भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने तो पग–पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए।

हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है–

"वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः"

अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को आनन्ददायक कहते हैं।

सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक के शासनकाल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया। आचार्य चाणक्य ने तो आदर्श शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से अरण्य पालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हिन्दू धर्म व जीवन में चार आश्रम निर्धारित हैं जिनमे से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास का सीधा संबंध वनों से माना गया है। वृक्षों को देवता मानकर पूजने से उनका संरक्षण भी हो जाता है। मत्स्य पुराण में वृक्ष की तुलना मनुष्य के दस पुत्रों से की गई है।

"दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः, दशह्रद समःपुत्रो, दशपुत्र समोद्रुमः"।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदाथो का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की वैदिक भावना है कि –

"शं न उरुची भवतु स्वधाभिः।"

ऋग्वेद 7,35,3 (अन्नादि से युक्त पृथिवी हमारी शांति के लिए हो।)

''स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी यच्छा नः शर्म सप्रथाः।''

यजुर्वेद 36,13 (पृथिवी हमारे लिए कंटक रहित और बसने योग्य हो।) प्रकृति के दोहन, शोषण से मनुष्यों ने प्रकृति के नियमों की अवहेलना कर समस्त प्राणियों के जीवन को संकट में डाल दिया है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति दंड देने से नहीं चूकती है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है, जिसका आचार्य सायण "अविनाशं क्षेमं–सुरक्षित क्षेम" अर्थ किया है। इस नैरुक्त चिंतन है –

''अलब्धस्य लाभो योगः, प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः''

अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त का संरक्षण क्षेम। अतः सहज सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना ही स्वस्ति है। इसीलिए हमारे मनीषियों ने उद्घोष किया है –

"ओम द्यौ शान्तिः, अंतरिक्ष शांतिः, पृथ्वी शांतिः, आपःशांतिः।"

अतः मनुष्य को अपने मन ,वचन और आचरण एवं व्यवहार से प्रकृति के कोप को शांत करके ही अपना जीवन सुखी और शांत बना सकता है। भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण का वैज्ञानिक सरल उपाय –

''अश्वत्थमेकम् पिचुमन्दमेकम् न्यग्रोधमेकम् दश चिञ्चिणीकान।

कपित्थबिल्वाऽऽमलकत्रयञ्च पञ्चाऽऽम्रमुप्त्वा नरकन्न पश्येत।।''

स्कंदपुराण :

1. अश्वत्थः = पीपल (100 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है) 2. पिचुमन्दः = नीम (80 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है) 3. न्यग्रोधः = वटवृक्ष (80 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है) 4. चिञ्चिणी = इमली (80 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है)

5. कपित्थः = कविट (80 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है) 6. बिल्वः = बेल (85 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है) 7. आमलकः = आवला (74 प्रतिशत कार्बनडाइऑक्साइड सोखता है) 8. आम्रः = आम (70 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है)

(उप्ति = पौधा लगाना) अर्थात् –जो कोई इन वृक्षों के पौधो का रोपण करेगा, उनकी देखभाल करेगा, उसे नरक के दर्शन नही करने पड़ेंगे। इस सीख का अनुसरण न करने के कारण हमें आज नरक के दर्शन हो रहे है। पीपल, बरगद और नीम जैसे वृक्ष रोपना बंद होने से सूखे की समस्या बढ़ रही है। ये सारे वृक्ष वातावरण में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाते है। साथ ही धरती के तापमान को भी कम करते है।

हमने इन वृक्षों के पूजने की परंपरा को अन्धविश्वास मानकर फटाफट संस्कृति के चक्कर में इन वृक्षो से दूरी बनाकर यूकेलिप्टस (नीलगिरी) के वृक्ष सड़क के दोनों ओर लगाने की शुरूआत की। यूकेलिप्टस झट से बढ़ते है लेकिन ये वृक्ष दलदली जमीन को सुखाने के लिए लगाए जाते हैं। इन वृक्षों से धरती का जलस्तर घट जाता है। विगत 40 वर्षों में नीलगिरी के वृक्षों को बहुतायात में लगा कर पर्यावरण की हानि की गई है।

आगामी वर्षों में प्रत्येक 500 मीटर के अंतर पर यदि एक एक पीपल, बड़, नीम आदि का वृक्षारोपण किया जाएगा, तभी अपना भारत देश प्रदूषण मुक्त होगा। घरों में तुलसी के पौधे लगाना होंगे। हम अपने संगठित प्रयासों से ही अपने भारत को नैसर्गिक आपदा से बचा सकते हैं। भविष्य में हमारी आने वाली पीढ़ी को भरपूर मात्रा में नैसर्गिक ऑक्सीजन मिले इसके लिए आज से ही अभियान आरंभ करने की आवश्यकता है। हम पीपल, बड़, बेल, नीम, आंवला एवं आम आदि वृक्षों को लगाकर आने वाली पीढ़ी को निरोगी एवं "सुजलां सुफलां पर्यावरण" देने का प्रयत्न करना चाहिए।

भारतीय परम्पराओं का पर्यावरण संरक्षण से नाता पुराना है.....

भौतिक विकास के पीछे दौड़ रही दुनिया ने आज जरा ठहरकर सांस ली, तो उसे अहसास हुआ कि चमक–धमक के फेर में क्या कीमत चुकाई जा रही है। आज ऐसा कोई देश नहीं है जो पर्यावरण संकट पर मंथन नहीं कर रहा हो। भारत भी चिंतित है। लेकिन, जहां दूसरे देश भौतिक चकाचौंध के लिए अपना सबकुछ लुटा चुके हैं, वहीं भारत के पास आज भी बहुत कुछ है। पश्चिम के देशों ने प्रकृति को हद से ज्यादा नुकसान पहुंचाया है। पेड़ काटकर जंगल के कंक्रीट खड़े करते समय उन्हें अंदाजा नहीं था कि इसके क्या गंभीर परिणाम होंगे? प्रकृति को नुकसान पहुंचाने से रोकने के लिए पश्चिम में मजबूत परंपराएं भी नहीं थीं।

प्रकृति संरक्षण का कोई संस्कार अखण्ड भारत भूमि को छोड़कर अन्यत्र देखने में नहीं आता है। जबकि सनातन परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं। हिन्दू धर्म में प्रकृति पूजन का प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। भारत में पेड़–पौधों, नदी–पर्वत, ग्रह–नक्षत्र, अग्नि–वायु सहित प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गए हैं। पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को मां स्वरूप माना गया है। ग्रह–नक्षत्र, पहाड़ और वायु देवरूप माने गए हैं।

प्राचीन समय से ही भारत के वैज्ञानिक ऋषि–मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी जानकारी थी। वे जानते थे कि मानव अपने क्षणिक लाभ के लिए कई मौकों पर गंभीर भूल कर सकता है। अपना ही भारी नुकसान कर सकता है। इसलिए उन्होंने प्रकृति के साथ मानव के संबंध विकसित कर दिए। ताकि मनुष्य को प्रकृति को गंभीर क्षति पहुंचाने से रोका जा सके। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन करके चलने का महत्वपूर्ण संस्कार है। यह सब होने के बाद भी भारत में भौतिक विकास की अंधी दौड़ म प्रकृति पददलित हुई है। लेकिन, यह भी सच है कि यदि ये परंपराएं न होतीं तो भारत की स्थिति भी गहरे संकट के किनारे खड़े किसी पश्चिमी देश की तरह होती। हिन्दू परंपराओं ने कहीं न कहीं प्रकृति का संरक्षण किया है। हिन्दू धर्म का प्रकृति के साथ कितना गहरा रिश्ता है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि की स्तुति में रचा गया है।

हिन्दुत्व वैज्ञानिक जीवन पद्धति है। प्रत्येक हिन्दू परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। इन रहस्यों को प्रकट करने का कार्य होना चाहिए। हिन्दू धर्म के संबंध में एक बात दुनिया मानती है कि हिन्दू दर्शन ''जियो और जीने दो'' के सिद्धांत पर आधारित है। यह विशेषता किसी अन्य धर्म में नहीं है। हिन्दू धर्म का सह–अस्तित्व का सिद्धांत ही हिन्दुओं को प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। वैदिक वाङ्मया में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और सम्वर्द्धन के निर्देश मिलते हैं। हमारे ऋषि जानते थे कि पृथ्वी का आधार जल और जंगल है। इसलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्ष और जल को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है – 'वृक्षाद् वर्षति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न सम्भवः' अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है।

जंगल को हमारे ऋषि आनंददायक कहते हैं – 'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु'

यही कारण है कि हिन्दू जीवन के चार महत्वपूर्ण आश्रमों में से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का सीधा संबंध वनों से ही है।

हम कह सकते हैं कि इन्हीं वनो में हमारी सांस्कृतिक विरासत का सम्वर्द्धन हुआ है। हिन्दू संस्कृति में वृक्ष को देवता मानकर पूजा करने का विधान है। वृक्षों की पूजा करने के विधान के कारण हिन्दू स्वभाव से वृक्षों का संरक्षक हो जाता है। सम्राट विक्रमादित्य और अशोक के शासनकाल में वन की रक्षा सर्वोपरि थी। चाणक्य ने भी आदर्श शासन व्यवस्था में अनिवार्य रूप से अरण्यपालों की नियुक्ति करने की बात कही है. हमारे महर्षि यह भली प्रकार जानते थे कि पेड़ों में भी चेतना होती है। इसलिए उन्हें मनुष्य के समतुल्य माना गया है।

ऋग्वेद से लेकर बृहदारण्यकोपनिषद्, पद्मपुराण और मनुस्मृति सहित अन्य वाङ्मयों में इसके संदर्भ मिलते हैं। छान्दोग्यउपनिषद् में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'वृक्ष जीवात्मा से ओतप्रोत होते हैं और मनुष्यों की भाँति सुख–दुःख की अनुभूति करते हैं।' हिन्दू दशन में एक वृक्ष की मनुष्य के दस पुत्रों से तुलना की गई है– ''दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः। दशह्रद समःपुत्रो दशपत्र समोद्रुमः।।''

घर में तुलसी का पौधा लगाने का आग्रह भी हिन्दू संस्कृति में क्यों है? यह आज सिद्ध हो गया है। तुलसी का पौधा मनुष्य को सबसे अधिक प्राणवायु ऑक्सीजन देता है। तुलसी के पौधे में अनेक औषधिय गुण भी मौजूद हैं। पीपल को देवता मानकर भी उसकी पूजा नियमित इसीलिए की जाती है क्योंकि वह भी अधिक मात्रा में ऑक्सीजन देता है।

परिवार की सामान्य गृहिणी भी अपने अबोध बच्चे को समझाती है कि रात में पेड़–पौधे को छूना नहीं चाहिए, वे सो जाते हैं, उन्हें परेशान करना ठीक बात नहीं। वह गृहिणी परम्परावश ऐसा करती है। उसे इसका वैज्ञानिक कारण नहीं मालूम। रात में पेड़ कार्बन डाई ऑक्सीजन छोड़ते हैं, इसलिए गांव में दिनभर पेड़ की छांव में बिता देने वाले बच्चे–युवा–बुजुर्ग रात में पेड़ों के नीचे सोते नहीं हैं।

देवों के देव महादेव तो बिल्व–पत्र और धतूरे से ही प्रसन्न होते हैं। यदि कोई शिव भक्त है तो उसे बिल्वपत्र और धतूरे के पेड़–पौधों की रक्षा करनी ही पड़ेगी। वट पूर्णिमा और आंवला ग्यारस का पर्व मनाना है तो वटवृक्ष और आंवले के पेड़ धरती पर बचाने ही होंगे। सरस्वती को पीले फूल पसंद हैं। धन–सम्पदा की देवी लक्ष्मी को कमल और गुलाब के फूल से प्रसन्न किया जा सकता है। गणेश दूर्वा से प्रसन्न हो जाते हैं। हिन्दू धर्म के प्रत्येक देवी–देवता भी पशु–पक्षी और पेड़–पौधों से लेकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण का संदेश देते हैं।

जल स्रातों का भी हिन्दू धर्म में बहुत महत्व है। ज्यादातर गांव–नगर नदी के किनारे पर बसे हैं। ऐसे गांव जो नदी किनारे नहीं हैं, वहां ग्रामीणों ने तालाब बनाए थे। बिना

नदी या ताल के गांव–नगर के अस्तित्व की कल्पना नहीं है. हिन्दुओं के चार वेदों में से एक अथर्ववेद में बताया गया है कि आवास के समीप शुद्ध जलयुक्त जलाशय होना चाहिए। जल दीर्घायु प्रदायक, कल्याणकारक, सुखमय और प्राणरक्षक होता है। शुद्ध जल के बिना जीवन संभव नहीं है।

यही कारण है कि जल स्रोतों को बचाए रखने के लिए हमारे ऋषियों ने इन्हें सम्मान दिया। पूर्वजों ने कल–कल प्रवाहमान सरिता गंगा को ही नहीं वरन सभी जीवनदायनी नदियों को मां कहा है। हिन्दू धर्म में अनेक अवसर पर नदियों, तालाबों और सागरों की मां के रूप में उपासना की जाती है। छान्दोग्योपनिषद् में अन्न की अपेक्षा जल को उत्कृष्ट कहा गया है। महर्षि नारद ने भी कहा है कि पृथ्वी भी मूर्तिमान जल है। अन्तरिक्ष, पर्वत, पशु–पक्षी, देव–मनुष्य, वनस्पति सभी मूर्तिमान जल ही हैं। जल ही ब्रह्मा है। महान ज्ञानी ऋषियों ने धार्मिक परंपराओं से जोड़कर पर्वता की भी महत्ता स्थापित की है।

देश के प्रमुख पर्वत देवताओं के निवास स्थान हैं। अगर पर्वत देवताओं के वासस्थान नहीं होते तो कब के खनन माफिया उन्हें उखाड़ चुके होते। विन्ध्यगिरि महाशक्तियों का वासस्थल है, कैलाश महाशिव की तपोभूमि है। हिमालय को तो भारत का किरीट कहा गया है। महाकवि कालिदास ने ''कुमारसम्भवम'' में हिमालय की महानता और देवत्व को बताते हुए कहा है –

'अस्तुस्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः.'

भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन की पूजा का विधान इसलिए शुरू कराया था क्योंकि गोवर्धन पर्वत पर अनेक औषधि के पेड़–पौधे थे, मथुरा के गोपालकों के गोधन के भोजन–पानी का इंतजाम उसी पर्वत पर था। मथुरा–वृन्दावन सहित पूरे देश में दीपावली के बाद गोवर्धन पूजा धूमधाम से की जाती है।

इसी तरह हमारे महर्षियों ने जीव–जन्तुओं के महत्व को पहचानकर उनकी भी देवरूप में अर्चना की है। मनुष्य और पशु परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर हैं। हिन्दू धर्म में गाय, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, हाथी, शेर और यहां तक की विषधर नागराज को भी पूजनीय बताया है। प्रत्येक हिन्दू परिवार में पहली रोटी गाय के लिए और आखिरी रोटी कुत्ते के लिए निकाली जाती है। चींटियों को भी बहुत से हिन्दू आटा डालते हैं। चिडियों और कौओं के लिए घर की मुंडेर पर दाना–पानी रखा जाता है। पितृपक्ष में तो काक को बाकायदा निमंत्रित करके दाना–पानी खिलाया जाता है।

इन सब परम्पराओं के पीछे जीव संरक्षण का संदेश है। हिन्दू गाय को मां कहता है। उसकी अर्चना करता है। नागपंचमी के दिन नागदेव की पूजा की जाती है। नाग–विष से मनुष्य के लिए प्राणरक्षक औषधियों का निर्माण होता है। नाग पूजन के पीछे का रहस्य ही यह है। हिन्दू धर्म का वैशिष्ट्य है कि वह प्रकृति के संरक्षण की परम्परा का जन्मदाता है। हिन्दू संस्कृति में प्रत्येक जीव के कल्याण का भाव है। हिन्दू धर्म के जितने भी त्योहार हैं, वे सब प्रकृति के अनुरूप हैं। मकर संक्रान्ति, वसंत पंचमी, महाशिव रात्रि, होली, नवरात्र, गुड़ी पड़वा, वट पूर्णिमा, ओणम्, दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, छठ पूजा, शरद पूर्णिमा, अन्नकूट, देव प्रबोधिनी एकादशी, हरियाली तीज, गंगा दशहरा आदि सब पर्वों में प्रकृति संरक्षण का पुण्य स्मरण है।

निश्कर्श : पारिस्थितिकी के संतुलन को बनाये रखने के लिए संसाधनों का सदुपयोग पारिस्थितिकीय विकास की अवधारणा पर होना चाहिए। भारत में जनसंसाधन के उपयोग की उपेक्षा उसके पिछड़ेपन का प्रमुख कारण है। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि पारिस्थितिकीय विकास की रणनीति जब तक विज्ञान और समाज के समन्वित आधार पर नहीं बनाई जाती, लक्ष्य तक पहुँचना आसान नहीं है क्योंकि विज्ञान को पूर्णतः मानव हित को ओर मोड़ना अति आवश्यक हो गया है। यह सुखद है कि पश्चिमी देशों का भौतिकवादी समाज अब जीवन मूल्यों को नये ढंग से समझने का प्रयास कर रहा है। भारत का प्राचीन पर्यावरणीय चिन्तन भविष्य की दिशा तय करने में सहायक हो सकता है।

REFERENCES

1. डॉ मुकेश गर्ग (2012), ''भारत में जल प्रदूषण : कारण और उपचार'', खंड संख्या 2, आईएसएसएन संख्या 2249–5894, पृष्ठ संख्या 555–567।

2. स्टोडडार्ट, डी.आर. (1965), ''भूगोल और पारिस्थितिक दृष्टिकोण – भौगोलिक सिद्धांत और विधि के रूप में पारिस्थितिकी तंत्र'', भूगोल, पृष्ठ पी 242 – 51, वॉल्यूम 50.

3. भारतेंदु अजय (2013) ''वायु प्रदूषण और पौधे के जीवन पर इसका प्रभाव'', वॉल्यूम न. 16, आईएसएसएन – 2319–2119, पृष्ठ संख्या 1130–1133

4. डॉ. शंकर अंभोरे और सभी (2013), पर्यावरण संरक्षण : ''भारत में प्रचलित स्थिति का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण'' खंड संख्या 2, आईएसएसएन नंबर 2277–8160, पेज नं। 35–37.

5. पीयूष कांति भट्टाचार्य (2010) ''दुनिया भर में पर्यावरण प्रदूषण मुक्त प्रणाली'', वॉल्यूम नं. –1, आईएसएसएन नंबर 2010–264, पेज नंबर 57–59।

6. चौधरी, ए.बी. (1991), ''पर्यावरण और हर्ब की पारिस्थितिकी – श्रुब फ्लोरा'', आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पी पी 530.

7. चड्ढा, एस.के. (1990), ''हिमालयः पर्यावरण समस्याएं'', आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पी पी 220.

8. कोल, एम. (1971), ''पौधे पशु और पर्यावरण'', भौगोलिक पत्रिका, पीपी 230–1, वॉल्यूम 44.

9. दीक्षित, के.आर. (1984), ''भूगोल के संगोष्ठी और पर्यावरण के शिक्षण के लिए एक प्रस्तावना'', भूगोल विभाग, पूना विश्वविद्यालय।

10. घोष, जी.के. (1994), ''पर्यावरण और विकास – भारत की वनस्पतियों के गुण'', (2 खंडों में), आशोष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पी पी 970.

11. हेविट, के. और हरे, एफ.के. (1973), ''मनुष्य और पर्यावरणय वैचारिक ढांचे'', कॉलेज भूगोल संसाधन पेपर पर आयोग, 20.

12. स्ट्रालर, ए.एन. और स्ट्रालर ए.एच. (1976), ''भूगोल और मनुष्य का पर्यावरण'', जॉन विले, न्यूयॉर्क

13. कुरैशी, एम.एच. (1994), ''पर्यावरण संरक्षणः एक ग्राम समुदाय की धारणा'', भूगोल विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)।